ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-2* May- 2020
Anthology : The Research

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में वर्णित अलंकार

Paper Submission: 15/05/2020, Date of Acceptance: 23/05/2020, Date of Publication: 28/05/2020

प्रतिमा गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर,
गायन विभाग,
डॉ0 भीमराव आंबेडकर
राजकीय महिला स्नात0
महाविद्यालय,
फतेहपुर, उ0प्र0, भारत

सारांश

अलंकार का अर्थ आभूषण या सजावट करने वाली वस्तु। जिस प्रकार किसी वस्तु को सुन्दर बनाने के लिये उसे सजाया जाता है उसे अलंकार कहते है। सृष्टि की रचना के साथ सुन्दरता का भी उदय हुआ है, सृष्टि के द्वारा रचित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सुन्दरता का ही द्योतक है, क्योकि रचना सुन्दरता का और विध्वंसता कुरूपता का सूचक है। इसी अलंकार का संगीत में भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है गायन–वादन को सुन्दर बनाने के लिये उसे भी स्वरों द्वारा अलंकृत किया जाता है। शास्त्रों में भी इसे महत्ता प्राप्त है। भरत द्वारा रचित नाट्यशास्त्र ग्रन्थ में अलंकार का विस्तार से वर्णन किया गया है इस ग्रन्थ में संगीत, नाट्य, आभूषण एवं काव्य आदि के लिए अलंकारों का वर्णन किया गया है। इस शोधपत्र में केवल संगीत के परिप्रेक्ष्य में वर्णित अलंकारों को इंगित किया गया है।

मुख्य शब्द : अलंकार, सौन्दर्य, नाट्य, नाटक, स्वर, साहित्य, संगीत, भरत, आभूषण, कला इत्यादि।

प्रस्तावना

अलंकार शब्द का अर्थ अत्यंत ही व्यापक एवं विशाल है। कलाओं में काव्यकला, संगीतकला, चित्रकला आदि में तों इसका मुख्य स्थान है साथ ही संसार की छोटी से छोटी वस्तु के निर्माण में अलंकार का विशेष स्थान है। जैसे– घर के सजावट में, श्रृंगार, बुनाई–सिलाई आदि सभी में सुन्दरता का विशेष स्थान है, प्रकृति के द्वारा रचित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इस अकेले शब्द अलंकार में समा सकती है। अलंकार संस्कृत भाषा का शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति 'अलम् +कृ+घञ्' इस प्रकार से हुई है। जिसका अर्थ सजाना, सजाए या अलङ्कृत करने की क्रिया है। अलंकार का सामान्य अर्थ सजावट से लिया जाता है।

प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक अलंकारों को संगीत के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसकी महत्ता को सभी संगीतकारों एवं शास्त्रकारों ने मानी है।

नाट्यशास्त्र से पूर्व भी अलंकारों का वर्णन मिलता है परन्तु अलंकारो का प्रयोग अन्य नामों से किया जाता था। सामवेद में सातों स्वरों को कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार कहा जाता था।

तृतीय, द्वितीय, प्रथम, कुष्ट, अतिस्वार, मन्द्र , चतुर्थ
सा रे ग म प ध नि

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार गीत की विकसित अवस्था में गीत और वीणावादन दोनों में गमक और अलंकारों का प्रयोग होने लगा था। सामगान में गाये जाने वाले अलंकारो के कुछ उदाहरणः–

अतिक्रम

एक–एक स्वर को छोड़कर चलना जैसे– प नि, नि रे, ध सां इत्यादि।

रोहि

आरोही वर्ण सा, रे, सा रे ग, सा रे ग म इत्यादि।

विनत

उल्टे क्रम से स्वर लेना जैसे – ग– म–म– ग।

पर्व

किसी मंत्र का उतना अंश जो एक सांस में गाया जा सके।

सामगान के अतिरिक्त नारदीय शिक्षा, पुराण आदि ग्रन्थों में भी अलंकारो का वर्णन मिलता है।

भरत ने नाट्यशास्त्र के 16वें अध्याय के अर्न्तगत काव्य के अलंकारों का वर्णन किया है। भरत ने नाटक आदि में प्रयोग किये जाने वाले चार अलंकार बताये है।

उपमा रूपक चैव दीपकं यमकं तथा
अलंकारस्तु विज्ञेयाश्चत्वारों नाटकाश्रयाः।

अर्थात् नाटक में प्रयोग किये जाने वाले चार अलंकार उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक है। संगीत में प्रयुक्त काव्य में यही अलंकार लागू होता है। संगीत में शब्दों का अत्यन्त महत्व है।

भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र के 17वें अध्याय में विभिन्न अवसरों पर की जाने वाली वार्तालाप जैसे दूरस्थ व्यक्ति को पुकारना, शोक, चिन्ता, हर्ष, अहंकार, क्रोध आदि में प्रयुक्त ध्वनि की तीव्रता का पाठ्य के अलंकार के रूप में वर्णन किया है। स्वर की उच्च, नीच ध्वनि जितनी संगीत में महत्वपूर्ण है उतनी ही साहित्य में भी है। जब हम अपने भावों को व्यक्त करते है तब केवल वाणी ही नहीं वरन् आंगिक चेष्टाएं भी प्रधान रहती है। वाणी के उतार–चढ़ाव हमारे भावों को व्यक्त करने में सहायक होते है। उतार–चढ़ाव ठीक ढ़गं से न हो तो इससे अनिष्ट अर्थ का बोध होने लगता है। वाणी के इसी उतार–चढ़ाव को भरत ने निम्नलिखित स्वर के छः अलंकारों का पाठ्य में वर्णन किया है।

1.उच्च 2. दीप्त 3. मन्द्र 4. नीच 5. द्रुत 6. विलम्बित।

उच्च स्वर

उच्च स्वर उसे कहते है जो मूर्ध स्थान से उत्पन्न हो और थोडी ऊंची आवाज में बोला जाता है। इसका प्रयोग दूरस्थ व्यक्ति ये संभाषण के लिए बोला जाता है।

दीप्त स्वर

दीप्त स्वर जो मूर्धा स्थान से उत्पन्न हो और कुछ ऊंची आवाज में उच्चारित हो। इसका संयोजन, युद्ध, कलह, क्रोध, रोना आदि के प्रसंगो पर किया जाता है।

मन्द्र स्वर

मन्द्र स्वर वक्षस्थल से उत्पन्न होता है। इसका प्रयोग ग्लानि, चिंता, व्याधि, मूर्छा तथा गुढ़ार्थक शब्दों के कहने में होता है।

नीच स्वर

नीच स्वर वक्षस्थल से उत्पन्न होने वाले अत्यन्त मन्द्र स्वर होता है। इसकी योजना स्वाभाविक संभाषण, व्याधिआदि में किया जाता है।

द्रुत स्वर

द्रुत स्वर कण्ठ स्थल से शीघ्रतापूर्वक उच्चचरित किया जाता है। उसकी योजना स्त्रियों के द्वारा बच्चों को सांत्वना देने तथा प्रिय प्रस्तावकोअस्वीकृत करने में, भय, ज्वर आवेग आदि में करना चाहिए।

विलम्बित स्वर

विलम्बित स्वर कण्ठ स्थान में उच्चारित होता है तथा थोडा मन्द्र स्वरूप वाला होता है। इसका प्रयोग श्रृंगार वितर्क, विचार, लज्जा, चिन्ता, आश्चर्य पीड़ा आदि में करना चाहिए।

भरत के पाठ्य के इन छः अलंकारो का संगीत में बड़ा महत्वूर्ण स्थान है। ये सभी संगीत में प्रयुक्त किए जाते है। इनमें से उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच संगीत में नाद के ऊंचे नीचेपन तथा दुत और विलम्बित लय से सम्बन्धित है। संगीत में राग–भाव एवं राग की बढ़तके अनुसार उच्च तथा मन्द्र स्वर का प्रयोग किया जाता है। सांगीतिक वन्दिशों में भावों को व्यक्त करने के लिए भरत ने इन्हीं अलंकारों का प्रयोग किया है साथ ही स्वरों के माध्यम से जब भावों को व्यक्त करते है तो भी इन अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए राग दरबारी का चलन अधिकतर मन्द्र और मध्य सप्तक में होता है जो इसे अन्य रागों से अलग करता है। इस राग की ध्वनि का प्रयोग करके ही राग भाव को स्पष्ट किया जा सकता है।

भरत द्वारा वर्णित द्रुत तथा विलम्बित –अलंकार का संगीत में अत्यन्त महत्व है। ये दोनों अलंकार भरत ने गति शब्द के अर्थ में प्रयुक्त किया है। विलम्बित गति का प्रयोग मुख्यतः आलाप और द्रुत गति का प्रयोग तान में किया जाता है।भरत कृत नाट्यशास्त्र में अलंकार के विषय में इस प्रकार से उल्लेखित हैः–

शशिनारहितेय निशा बिजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषितवे च स्त्री गीतिरलंकारहीना स्यात्।

अर्थात् जैसे चन्द्र से हीन रात्रि, जल से हीन नदी, पुष्प से हीन लता और आभूषण के बिना नारी सुशोभित नहीं होती, वैसे ही अलंकारों से हीन गीति भी सुशोभित नहीं होती। इस प्रकार भरत ने गीति में अलंकारों के महत्व का वर्णन किया है।

गायन का समस्त क्रियाकलाप वर्णो के अन्तर्गत आता है। नाट्यशास्त्र में इन्हीं वर्णो स्थाई, आरोही, अवरोही तथा संचारी का उल्लेख किया गया है जो गान क्रिया के द्योतक है तथा अलंकारों के लिए आधारभूत हैं। नाट्यशास्त्र में इन वर्णो की परिभाषाओं के साथ अलंकार का भी उल्लेख किया हैः–

अत उर्ध्व प्रवक्ष्यामि वर्णालकांरलक्षणम्।
आरोही चावरोही च स्थायिचांरिणै तथा।
वर्णाश्चत्वार एवैते ह्यलंकारास्तदाश्रयाः।

अर्थात् अब मैं वर्ण तथा अलंकारों के लक्षण बताता हूं। ये वर्ण चार हैं– स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी तथा अलंकार इन्हीं के आश्रित है।

इसके अतिरिक्त भरत ने वीणा वाद्य के अलंकारों का भी वर्णन सविस्तार किया है। जो निम्नलिखित हैः–

एवं ज्ञेया वैणे वाद्यविषाने तु धातवस्तज्ज्ञैः।

अर्थात् इस प्रकार अनेक धातुओं के आश्रित वीणा वादन को समझना चाहिए। अलंकार प्रयोग के विषय में भरत ने कहा है–

एतानि तु बहिर्गीतान्याहुर्वार्द्यविदो जनाः।
स्तालानि ह्तालानिचित्रवृतौ कृतानि तु।।

अर्थात् बर्हिगीतों में इन अलंकारों का प्रयोग ताल सहित या बिना ताल के वृत्ति चित्र, वृत्त और मार्ग के अनुसार रखे जाते है।

धातुभिश्चित्रवीणायां गुरूलध्क्षरान्वतम्।
वर्णलंकारसंयुक्त प्रयोक्तव्यं बुधैरथ।।

अर्थात् निर्गीत धातु तन्तुओं से युक्त चित्रवीणा पर निपुण वादकों द्वारा वर्ण, अलंकार तथा गुरू एवं लघु वर्णो से युक्त प्रयोग किया जाए। इस प्रकार से भरत ने वीणा वाद्य पर तन्त्रियों का छेड़ने की विभिन्न क्रियाओं को धातु संज्ञा दी गयी है।

निष्कर्ष

संगीत शिक्षा के प्रारम्भ में अलंकारो के अभ्यास से स्वर और लय का बोध विद्याथियों कराया जाता है।अलंकार सीख जाने के बाद ही राग सिखाना शुरू किया जाता हैं। गायन वादन क्रिया में इन अलंकारों का प्रयोग, अपने गायन–वादन को सुन्दर तथा भावयुक्त बनाना है। साथ ही राग विस्तार में भी बहुत सहायता मिलती है। तानें इत्यादि इन्हीं अलंकारों से ही बनती है। शास्त्रों में वर्णित कुछ ही अलकारों का प्रयोग किया जाता है। नाट्यशास्त्र में इसका विस्तार से व्याख्या किया गया है।अलेकारों का समुचित विकास विभिन्न कालों में होता रहा है। भरत ने नाट्य के हर क्षेत्र काव्य, संगीत, भाव आदि में अलंकारों का वर्णन किया है ससे ये सिद्ध होता है कि भरत ने अलंकारों को पूर्ण सौन्दर्यशाली मानते हुए, उसकी आवश्यकता हर क्षेत्र में अनुभव की और बड़े ही प्रभावशाली ढ़ग से असके महत्व को बताया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *द्विवेदी डॉ0 रमाकान्त, संगीत स्वरित, साहित्य रत्नालय कानपुर, प्रथम संस्करण 2004, पेज न0129*
2. *डॉ0 शबनम, भारतीय संगीत में अलंकार श्री सोमाथ ढल संजय प्रकाशन सोम बाजार दिल्ली, सन् 2000 पेज न0 02 ,4,6,13,14,24,37।*
3. *सिंह, जयदेव ठाकुर, भारतीय संगीत का इतिहास,विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, सन्1994 पेज न0 71,126।*
4. *ठाकुर ओकार नाथ, संगीताजलि भाग 1 चौखम्बा वाराणसी सन्1959पेज न0 08।*
5. *संगीत की पारिभाषिक शब्दावली पेज न0 40*
6. *चौधरी डॉ सुभद्रा , संगीत रत्नाकर पेज 150, 151।*